Cloud Messenger Of Kalidas

1893

G. K. V.
HARDWAR

THE CLOUD MESSENGER

OF

KÁLÍDÁS,

...DERED INTO HINDÍ VERSE, WITH NOTES, AND A VOCABULARY,

BY

RÁJÁ LAKSHMAN SINGH,

मेघदूत

...ि कवि कालिदास के संस्कृत काव्य

का

... न्दी भाषा के छन्दों में

...का और कोश सहित

...ाजा ... सिंह का किया हुआ

रा... ...लय" आगरा में छापा गया।

सन् १८६३ ई०।

PRINTED BY P. DEBI PRASAD

AT THE RAJPUT PRESS, AGRA.

TO

F. S. GROWSE, ESQ., C. I. E.,

MAGISTRATE AND COLLECTOR OF BULANDSHAHR,

IN RECOGNITION OF HIS INTEREST

IN THE DEVELOPMENT OF HINDI LITERATURE,

THIS METRICAL HINDI VERSION

OF THE CLOUD MESSENGER OF KALIDAS

IS DEDICATED BY THE

BULANDSHAHR:
24*th June* 1882. } TRANSLATOR.

श्रीयुत

फ्रेड्रिक साल्मन गुरुस् साहिब

एम· ए·, सी· आई· ई·

को

हिन्दी भाषा के प्रवृध्योत्साही जानकर
उलथाकार ने कालिदास के मेघदूत
काव्य का यह हिन्दी छन्दबद्ध
अनुवाद अर्पण किया।

समालोचना।

श्रील श्रीयुत क- ब- मु- सम्पादक महाशय !

मेघदूत का हिन्दी अनुवाद बुलन्दशहर के डिप्युटी कलेक्टर राजा लक्ष्मण सिंह बहादुर कृत।

दोहा—समालोचना

धन्य धन्य भारतवरस सकल वरस सिरताज।
जहां व्यास वल्मीक सम प्रगटे कविकुल राज ॥ १ ॥
कालिदास भारवि प्रभृत उपजे याही ठोर।
ऐसे अनत न होयंगे भये नहीं कहुं और ॥ २ ॥
श्रीगोवर्द्धन भट्ट हरिचन्द्र आदि कविराइ।
रत्न सुभारत भूमि के इनतें अधिक सुहाइ ॥ ३ ॥
इनको रचना वाहिनी सज्जन हृदय सुदेस।
सोंच रहीं अभिनव रुचिर तरल तरङ्ग असेस ॥ ४ ॥
जो भारतकवि सहज ही कियो चित्र निर्मान।
औरन से नहिं हो सको प्रबल परिश्रम ठान ॥ ५ ॥
यह सौरभ माधुर्य्य पुनि यह लालित्य रसाल।
और कहीं नहिं पाइये खोजो तीनहु काल ॥ ६ ॥
मेघदूत रचना मधुर कालिदास कविराज।
करो अलौकिक रसमयी जानत विवुध समाज ॥ ७ ॥

ता भाषा अनुवाद अब लच्छमण सिंह नरेस।
कियो छन्द स्वच्छन्द ह्वै, कवि कुल कमल दिनेश ॥ ८ ॥
"जितनो आशय मूल में जितने पद कविउक्त।
जितनो भाव जहां लिखो उतनो कियो प्रयुक्त ॥ ९ ॥
उनहीं के पर्य्यायपद उनहीं के सम अर्थ।
उनहीं ते कारज कियो लियो न और सभर्थ" ॥ १०
बिन संसय कहिये यही अति रसमय अनुबाद।
बांचत रसिकन के हृदय उपजे विविध प्रसाद ॥ ११ ॥
"देखी विरही एक विध समझायो निज दूत।
गद्य पद्य कर तीन बिध समझायो नृपपूत" ॥ १२ ॥
को दयालु ऐसो सुनो जो बिरही हितकार।
मेघदूत साकूत से समझायो वह बार ॥ १३ ॥
अब यह आशा करत हैं भाषा वारिध चन्द्र।
औरहु रचना चन्द्रिका करि हरि हैं दुख द्वन्द ॥ १४ ॥

श्रीराधाचरण गोस्वामी।

REVIEW.

RECENT HINDI CLASSICS.*

These two works afford excellent evidence of the rank and importance which the Hindî language has at length acquired in India. The Hindi language has had a curious time of it during this century. At first its very existence was denied; then it was contemned as a low *patois*; then it was allowed, but only as a barren dialect compelled to resort to Sanskrit to express any idea beyond the vulgarest wants; then it was said to be Hindustani written in black square characters. When newspapers, histories, and scientific books began to be written in Hindî its claims to recognition could no longer be resisted; but dissentients still objected that the new language *was not wanted*, for Hindustani could express all that India desired. The fact is that Hindî has always been the language of the Hindús of Northern India, and the overthrow of the Muhammadan power has permitted the Hindús to rise to a leading position in society. The real vernacular of northern India has thus at last found the opportunity to assert itself, and we are glad to know that its claims are now fully recognised; for by a recent decision of the Civil Service Commissioners Hindí is made an obligatory subject of examination for all Indian civil servants proceeding to N.-W. Provinces of India, and Hindustani is now made optional.

We have recently noticed some scientific works in Hindí published in the Panjâb; and it is with much pleasure that we call attention to the books which head this notice, as they are from the pen of one of the most chaste writers of Hindí who has yet appeared. Some years ago Rájá Lakshman Singh gratified students by a Hindí translation of the

---

* 1. The Raghuvansá, translated into Hindí by Rájá Lakshman Singh. Printed by Baijnáth Prasád, Masdar-un-Nawádir Press, Etáwah, 1878.

2. Meghdúta, translated into Hindí verse by Rájá Lakshman Singh. Printed by E. J. Lazarus & Co., Medical Hall Press, Benares, 1882.

famous "Sakuntalá." This work was remarkable for its vivacity, its elegance of expression, and for its faithful reproduction of the beauties of the marvellous original. The "Raghuvansá" shows the careful accuracy of a ripe scholar, and a command of language which carries the reader with lightness and pleasure over the 550 pages which compose this book.

The "Cloud Messenger," of which only the first half is as yet printed, is a more ambitious work. It renders one of the finest poems of India's finest bard into modern Hindí verse—a performance requiring gifts very far from common. The difficult task has been ably accomplished by the learned Rájá. His verses are in the Braj form of Hindí, and read with remarkable sweetness and melody. There is, in them, no affectation of archaic barbarisms, so common among lesser Hindí poets; who seem to imagine that the chief excellence of poetry lies in its unintelligibility. Rájá Lakshman Singh seems to be aware that simplicity is a mark of genius. He punctually renders verse by verse, placing the Sanskrit original on the opposite page of each; and adds numerous explanatory notes, and a prose commentary in Hindí. It is not often that we can commend Hindí poetry. The wonderful flexibility and richness of the Hindí language have tempted hosts of scribblers to flood India with measured lines, destitute of any ideas worthy the name of poetry. Such works as that before us will, it is to be hoped, develop better notions, by showing modern Indians that the fame of their ancient poets was based on the beautiful ideas their verses contained, and not on the mere tinkling of rhyming words.

We trust that Rájá Lakshman Singh will speedily complete the task he has so excellently commenced. He has placed himself among the first rank of Hindí writers, and is, by his works cultivating and enriching the vernacular he loves, and rendering it suitable to express the expanding ideas of an intellectual and rising people. *(The Homeward Mail, 27th March 1883.)*

प्रथम भूमिका।

उपमा अलंकार में कालिदास से बढ़कर अवतक कोई कवि भारतवर्ष में नहीं हुआ और उनके ग्रंथों में मेघदूत भी इसी अलंकार की उत्कृष्टता के कारण सराहने योग्य गिना जाता है। इस छोटे से काव्य को पढ़कर पढ़नेवाले के चित्तपर अक सा होजाता है कि विधाता ने कालिदास को कितनी बड़ी कल्पनाशक्ति दी थी। मनुष्य की प्रकृत जानने और स्थान का वर्णन करने और स्वभावका लालित्य दिखाने में यह कवि एकही हुआ है। मेघदूत का अवलोकन करने से ये उत्तम गुण कालिदास के भली भांति दीखते हैं उन के वाग्विलास की बड़ाई जितनी की जाय थोड़ी है। इस काव्य का प्रकरण संक्षेप से यह है कि कोई यक्ष अपने काम में असावधान होगया तब उसके स्वामी कुवेर ने कोप कर उसे बरस दिन के लिये देशनिकाला दिया इस शाप के वश वह अलकापुरी को छोड़ दक्खन में रामगिरि पर्वत पर अकेला जा रहा जब उस पहाड़ में रहते कुछ दिन बीत गये और असाढ़ का बादल उमड़ा उस बिरही को अपनी स्त्री की बहुत सुधि आई मन में सोचा कि प्यारी के पास कुछ कुशल का संदेसा भेजना चाहिये बादल के सामने खड़ा हुआ इसी सोच बिचार में था कि प्रेम की अधिकता में विह्वल हो गया बादल ही को दूत बनाकर अलकापुरी का मार्ग बताने और अपना संदेसा सुनाने लगा रामगिरि से अलका तक जो जो नदी और पहाड़ और तीर्थ और मुख्य मुख्य नगर और देश हैं उनका थोड़ा थोड़ा पता देता गया है पहले ६५ श्लोकों में अलका तक

पहुंचाया है इसीका नाम "पूर्व्वमेघ" है फिर "उत्तरमेघ" के ५१ श्लोकों में अलकापुरी की शोभा और यक्षिणी की दशा वर्णन करके अपना संदेसा बतलाया है। निदान जब बादल से कहे हुए संदेसे का वृत्तान्त कुबेर के कान तक पहुंचा उसने दयालु होकर यक्ष का अपराध क्षमा किया और स्त्री पुरुष का संयोग बरस दिन बीतने से पहले ही करा दिया ॥

हमने हिन्दी छन्दों में यह उल्था अभी पूर्व्वमेघ का किया है परन्तु विचार है कि यदि अवकाश मिला तो उत्तर का भी करेंगे एक भाषा के छन्द को दूसरी भाषा के छन्द में उल्था करना कुछ तो आपही कठिन होता है तिसपर हमारा नियम है कि मूल से उल्था न्यूनाधिक न हो और भाव में भी कुछ बिरोध न आवे इसी से कठिनाई अधिक दीखती है फिर भी हम आशा करते हैं कि हमारे इस तुच्छ आरम्भ को देखकर कोई हिन्दी भाषा को अल्पता का दोष न देगा किन्तु विदित होगा कि यह भाषा बड़े विस्तार की है ॥ इतिशुभम् ॥

२४जून १८८२ई० ।

दूसरी भूमिका ।

सन १८८२ ई- में मेघदूत के पूर्व्वार्ध का अनुवाद हिन्दी भाषा के छन्दों में करके मैंने प्रतिज्ञा की थी कि यदि अवकाश मिला तो उत्तरार्ध का अनुवाद भी इसी भांति करके प्रकाशित कराऊंगा दैव क्रपा से वह प्रतिज्ञा पूरी हुई अब दोनों भाग इकट्ठे छापे जाते हैं और पाठकों की सहायता निमित्त ग्रन्थ के अन्त में एक कोश भी लगा दिया गया है जिस्से मूल के प्रत्येक शब्द का और अनुवाद के असाधारण संस्कृत शब्दोंका अर्थ जाना जायगा॥ वास्तव में यह कोश वही है जो प्रोफ़ेसर विलसन महाशय ने अपने अङ्गरेज़ी मेघदूत के अन्त पर लगाया था परन्तु मैं ने अङ्गरेज़ी के ठौर हिन्दी में अर्थ लिखा है और अनुवाद के कठिन कठिन शब्दों का अर्थ भी कर दिया है ॥

२८ फ़रवरी १८८४ ई०

तीसरी भूमिका ।

जितनी आशा थी उस्से अधिक मांग इसग्रंथ की हुई इस्से जाना गया कि हिन्दी के रसिकों में इसने पूराआदर पाया पहले जो कुछ दोष रहगये थे अब तीसरी बार के छापे में दूर कर दिए गए हैं ॥

आगरा २२ जौलाई १८९३ ई०

लक्ष्मणसिंह

श्री कालिदास कृत मेघदूत

॥ श्रीः ॥

मेघदूतपूर्व्वार्द्धम्

मन्दाक्रान्ता वृत्तम् ।

कश्चित् कान्ताविरहगुरुणा स्वाधिकारप्रमत्तः
शापेनास्तं गमितमहिमा वर्षभोग्येन भर्त्तुः ॥
यक्षश्चक्रे जनकतनयास्नानपुण्योदकेषु
स्निग्धच्छायातरुषु वसतिं रामगिर्य्याश्रमेषु ॥ १ ॥
तस्मिन्नद्रौ कतिचिदबलाविप्रयुक्तः स कामी
नीत्वा मासान् कनकवलयभ्रंशरिक्तप्रकोष्ठः ॥
आषाढस्य प्रथमदिवसे मेघमाश्लिष्टसानुं
वप्रक्रीडापरिणतगजप्रेक्षणीयं ददर्श ॥ २ ॥
तस्य स्थित्वा कथमपि पुरः कौतकाधानहेतो-
रन्तर्व्वाष्पश्चिरमनुचरो राजराजस्य दध्यौ ॥

---

१ यक्षः = देवयोनि विशेषः । विद्याधरोऽप्सरो यक्ष रक्षो गन्धर्व्वकिन्नराः
पिशाचो गुह्यकः सिद्धो भूतोऽमी देवयोनयः ॥

२ प्रथम दिवसे = पाठान्तरे "प्रशम दिवसे" ॥

३ कौतकाधानहेतुः = कौतक्या गर्भाधानस्य कारणम् ॥

॥ श्रीः ॥

मेघदूत पूर्वार्ध

सवय्या

१ कारज में उनमत्त भएं एक जच्छ दई सब खोइ बडाई ।
जीयतें दूर रहे बरसेकलों सोंह बड़ी निज नाथ खवाई ॥
जाय बस्यो गिरि राम के आश्रम रूख घनेन में गेह बनाई ।
जानकी न्हानन पुन्य प्रताप भई जहां नीरन में पवित्ताई ॥
२ बसि ताही महीधर में विरही कितने एक मास बिताइ गयो ।
भुजबन्द गए गिर सोरन के इतनो थकि दूबर गात भयो ॥
फिर लागत मास असाढ़ लख्यो घनशैल पै सोहनो आइ छयो ।
झुकके मनहु गजराज बली गढ़ढावन खेल मचाइ रह्यो ॥
३ तिहिं केतकी फूल फुलावनहार के सन्मुख दासकुवेर गयो ।
उर अन्तर में अंसुवा भरके बड़ी बेर लों सोचत ठाडो रह्यो ॥

---

१ यच्छ एक प्रकार के उपदेवता हैं जिनका स्वामी कुवेर है। एक यच्छ अपने काम में उन्मत्त होकर अपराधी ठैरा कुवेरने कोप कर उसे बरस दिन का देशनिकाला दिया इस्से उसकी सब बड़ाई जाती रही शाप के बश घरबार छोड़ वह रामगिर पर्वत पर जहां बनोवास के समय श्री जानकी जी कुछ दिन रही थीं और उनके न्हानेसे वहांके जलपवित्र हुए थे शीतल छाहंमें घर बनाकर जाबसा ॥

२ उस पहाड़ में रहते जब कुछ महीने बीत गए तो वह विरह के दुःख में इतना दुबला होगया कि बांह में भुजबन्द भी न ठैरे असाढ़ लगते ही उस ने पहाड़ के सानु पर छाया हुआ बादल ऐसे देखा मानो कोई बड़ा हाथी झुककर गढ़ी का परकोटा ढा रहा है ॥

३ केतकी सावन भादों में फूलती है इस लिये बादल उसके गर्भ का कारण कहलाता है उस बादल के सन्मुख खड़ा होकर यच्छ बहुत बेर तक कुछ सोचता

मेघालोके भवति सुखिनोऽप्यन्यथावृत्तिचेतः
कण्ठाश्लेषप्रणयिनि जने किम्पुनर्दूरसंस्थे ॥ ३ ॥

प्रत्यासन्ने नभसि दयिताजीविता लम्बनार्थं
जीमूतेन स्वकुशलमयीं हारयिष्यन् प्रवृत्तिम् ॥
स प्रत्यग्रैः कुटजकुसुमैः कल्पितार्घाय तस्मै
प्रीतः प्रीतिप्रमुखवचनं स्वागतं व्याजहार ॥ ४ ॥

धूमज्योतिः सलिलमरुतां सन्निपातः क्व मेघः
सन्देशार्थाः क्व पटुकरणैः प्राणिभिः प्रापणीयाः ॥
इत्यौत्सुक्यादपरिगणयन् गुह्यकस्तं ययाचे
कामार्त्ता हि प्रकृतिकृपणाश्चेतनाचेतनेषु ॥ ५ ॥

४ जीमूतेन = जलधरेण ॥

अर्घः = आपः क्षीरं कुशाग्राणि दधि सर्पिश्च तण्डुलाः
यवाः सिद्धार्थकं चैव अष्टाङ्गार्घ्यं प्रकीर्त्तितम् ॥

अपिच

रक्तविल्वाक्षतैः पुष्पैर्दधिदूर्व्वाकुशैस्तिलैः
सामान्यः सर्व्वदेवानामर्घोऽयं परिकीर्त्तितः ॥

चित कण्ठलगी सुखियानहु को न रहै थिर देखत मेघ नयो।
फिर बात कहा उनकी कहिये जिन मीत तें दूर बसेरो लयो॥

४ सांवन आइ समीप लख्यो तब नारि के प्रान बचावन काज।
बादर दूत बनावन कों कुशलात संदेश पठावन काज॥
कूटजफूल नए कर लै मनकल्पित अर्घ बनावन काज।
बोल उठ्यो हंसते मुख ह्वै वह मेघ तें प्रीति बढावन काज॥

घनाक्षरी

५ घाम धूम नीर औ समीर मिले पाई देह
ऐसो घन कैसे दूतकाज भुगतावैगो।
नेह को संदेसो हाथ चातुर पठैवे जोग
बादर कहोजी ताहि कैसे के सुनावैगो।
बाढ़ी उत्कण्ठा जक्ष बुद्धि बिसरानी सब
वाही सों निहोरो जानि काज कर आवैगो।
कामातुर होतहैं सदाई मति हीन तिन्हैं
चेत औ अचेत माहं भेद कहां पावैगो॥

रहा इस पर कवि कहता है कि घटा उमड़ने के समय संयोगियों का भी चित्त ठिकाने नहीं रहता फिर वियोगियों की क्या दशा न होनी चाहिये॥

४ जब सांवन आया यक्ष ने जाना कि यक्षिणी विरह की ताप में मर जायगी इसलिये उसके पास अपनी कुशल का संदेसा भेजना चाहिये यह सोचकर मन में ठाना कि बादल के हाथ संदेशा भेजूंगा बादल को आदर देने के लिये कुछ बन के फूलों का अर्घ हाथ में ले हंसते मुख प्रीति मिली बातें कहने लगा॥

५ बादल तो धूप और धूंआ और पानी और पवन मिलकर बन्ता है और प्रेम का संदेसा लेजाने को बड़ा चतुर मनुष्य चाहिये परन्तु उस जक्ष को अपने चाव में न सूझा कि बादल क्योंकर संदेसा पहुंचावेगा इस पर कवि कहता है कि काम के सताए पुरुष स्वभाव ही से मूर्ख होतेहैं चेत औ अचेत में भेद नहीं जान सक्ते॥

जातं वंशे भुवनविदिते पुष्करावर्त्तकानां
जानामि त्वां प्रकृतिपुरुषं कामरूपं मघोनः ॥
तेनार्थित्वं त्वयि विधिवशाद्दूरबन्धुर्गतोऽहं
याञ्चा मोघा वरमधिगुणे नाधमे लब्धकामा ॥ ६ ॥

सन्तप्तानां त्वमसि शरणं तत् पयोद प्रियाया-
स्सन्देशं मे हर धनपतिक्रोधविश्लेषितस्य ॥
गन्तव्या ते वसतिरलका नाम यक्षेश्वराणां
बाह्योद्यानस्थितहरशिरश्चन्द्रिकाधौतहर्म्या ॥ ७ ॥

६ पुष्करावर्त्तकाः = पुष्करा नाम ते मेघा बृहन्तस्तोयमत्सराः ।

पुष्करावर्त्तकास्तेन कारणेनेह शब्दिताः ॥

मघोनः प्रकृतिपुरुषं = इन्द्रस्य प्रधान पुरुषं ॥

७ सन्तप्तानाम् = आतपेन वा प्रवासविरहेण वा संज्वरितानाम् ॥

धनपतिः = कुवेरः ॥

६ पुष्करावर्तक हैं प्रसिद्ध लोकलोकन में
वंश तिनही के नीके तैंने जन्म पायो है।
इच्छारूप धारन की गति है दई ने दई
मन्त्री सुरराजहू ने आपनो बनायो है।
एते गुन जानि तोपै मङ्गिता भयोहूं मेघ
बंधुन तें दूर मोहि बिधि ने बसायो है।
सज्जन पै मांगनो बिनाहू सरें काज भलो
नीच पै सरै हू काज आछो ना बतायो है॥

७ तू तौ है सहाई तनताप के सताएन कौ
भयो हूं बियोगी मैं कुबेरकोप पाइके।
छेम कौ संदेसो यातें मेरो प्रानप्यारी पास
अलकापुरी में मीत दीजो पहुंचाइके।
देखनही जोग आछी नगरी बनी है वह
लीनो जच्छराजन सुवास जहां आइके।
बागन में बाहरें विराजें चन्दचूड जाके
नितही अटान रहें चन्दछटा छाइके॥

६ पुष्करावर्तक बादलोंकी एकउत्तम जाति है यक्ष कहता है कि हे मेघ मैं जानता हूं तू इसी जातका है और यह भी जानता हूं कि जैसा रूप चाहे तू धर सकता है और इन्द्र का सखा भी तू है इसलिये तुझसे याचना करने में मैं शंका नहीं करता क्योंकि सज्जन पुरुषसे याचना पूरी नहो तौभी अच्छी है परन्तु नीचसे पूरी होजाय तौभी अच्छीनही॥

७ यक्ष बादल से कहता है कि तू सदां दुःखियों का सहाई है और मैं कुबेर के शापवश दुःखी हूं इसलिये तू मेरा संदेसा मेरी प्यारीके पास अलकापुरी में पहुंचा दे वह सुन्दर नगरी देखने योग्य है यक्षनायक उस में बसते हैं बागों में शिवजी ठैरते हैं उनके मस्तक के चन्द्रमा की चांदनी से अलका के महल सदां चमकते रहते हैं॥

त्वामारूढं पवनपदवीमुद्गृहीतालकान्ताः
प्रेक्षिष्यन्ते पथिकवनिताः प्रत्ययादाश्वसन्त्यः ॥
कस्सन्नद्धे विरहविधुरां त्वय्युपेक्षेत जायां
न स्यादन्योऽप्यहमिव जनो यः पराधीनवृत्तिः ॥ ८ ॥

मन्दं मन्दं नुदति पवनश्चानुकूलो यथा त्वां
वामश्चायं नदति मधुरं चातकस्ते सगर्व्वः ॥
गर्भाधानक्षमपरिचयं नूनमाबद्धमालाः
सेविष्यन्ते नयनसुभगं खे भवन्तं बलाकाः ॥ ९ ॥

तां चावश्यं दिवसगणनातत्परामेकपत्नी-
मव्यापन्नामविहतगतिर्द्रक्ष्यसि भ्रातृजायाम् ॥
आशाबन्धः कुसुमसदृशं प्रायशो ह्यङ्गनानां
सद्यःपाति प्रणयि हृदयं विप्रयोगे रुणद्धि ॥ १० ॥

९ दक्षिणश्चातकाश्चाषा ये च पुंसाङ्गिताः खगाः ।
मृगा वा वामगा दृष्टाः सैन्यसम्पद्बलप्रदाः ॥
सगर्व्वः = सहर्षः ॥

८ वातपन्थ जात तोहि नारी परदेसिन की
देखेंगी बार बार अलकें कर सों उठाइ।
बालम के आवन की आसा उर लाइ लाइ
धीरज धरेंगो नेक चिन्ता जियसों बिहाइ।
आएं तो समीप कोई नारि कों बिसारे नाहिं
बिरहाविथा में नर जौपै अपनी बसाइ।
ऐसो मन्दभागी मैं हूं दूसरो न और होइ
पराधीनवृत्ति हेत बैठो सुख हूं नसाइ॥

दोहा

९ मन्द मन्द मारुत बहै जैसो तोहि सुहाइ।
हरषित यह चातक मधुर बाएँ बोल्यो आइ॥
बगुली हू नभ में सुभग आई बांधि कतार।
गरभदान समरथ समझि तोहि देन मनुहार॥
१० मग में रुके न तू कहूं लखि है भौजी जाइ।
जीवति दिन गिनती करति पतिभरता चितलाइ॥

८ पवनके मार्गमें जाते हुए तुझे परदेसियों की स्त्रियां अपने खुले बाल मुखसे हटाहटा कर बारबार देखेंगी (खुले बाल इस लिये हैं कि जिस स्त्री का पति परदेश गया हो उसको अलक बांधना वर्जित है) बादल देखकर उन्हें भरोसा होगा कि अब हमारे पति घर आवेंगे क्योंकि बरसाकालमें अपनी स्त्रीको विरहके दुःखमें छोड़ना कोई नहीं चाहता ऐसा मन्दभागी तो मैं ही हूं कि पराधीन होकर अपना सब सुख खो बैठा हूं॥

९ मन्द मन्द पवन चलती है बाएं पर पपीहा बोलता है बगली आकाशमें पंक्ति बांधकर आई हैं मानों तुझे गर्भका दाता जान आदर देती हैं ये अच्छे अच्छे शगुनतेरे लिये हैं॥

१० इन शगुनों से निश्चय है कि मार्ग में कुछ विघ्न तुझे न होगा और तू अपनी भावज

कर्त्तुं यच्च प्रभवति महीमुच्छिलीन्ध्रातपत्रां
तच्छ्रुत्वा ते श्रवणसुभगं गर्ज्जितं मानसोत्काः ॥
आकैलासाद्बिसकिशलयच्छेदपाथेयवन्त-
स्सम्पत्स्यन्ते नभसि भवतो राजहंसास्सहायाः ॥ ११ ॥

आपृच्छस्व प्रियसखममुं तुङ्गमालिङ्ग्य शैलं
वन्द्यैः पुंसां रघुपतिपदैरङ्कितं मेखलासु ॥
काले काले भवति भवतो यस्य संयोगमेत्य
स्नेहव्यक्तिश्चिरविरहजं मुञ्चतो वाष्पमुष्णम् ॥ १२ ॥

मार्गं तावच्छृणु कथयतस्त्वत्प्रयाणानुरूपं
सन्देशं मे तदनु जलद श्रोष्यसि श्रोत्रपेयम् ॥
खिन्नः खिन्नः शिखरिषु पदं न्यस्य गन्तासि यत्र
क्षीणः क्षीणः परिलघुपयः स्रोतसां चोपयुज्य ॥ १३ ॥

११ उच्छिलीन्ध्रातपत्राम् = शिलीन्ध्रं एव छत्रं यस्याः तां ॥
विसकिशलयच्छेदपाथेयवन्तः = मृणालाग्राणां छेदैः शकलैः पाथेयवन्तः ॥

नेही हिरदो नारिको कोमल जैसो फूल।
बिरह मांहि आसा करति ताहि कछुक दृढ़मूल॥
११ छत्रवती छितिकों करति उच्छलिन्ध्र उपजाइ।
सो गरजन तेरी सुनत राजहंस हुलसाइ॥
मानसरोवर चलन कों कमलनाल लै पाथ।
उडि हैं धुर कैलास लों गगनपन्थ तो साथ॥
१२ मांगि सीख गिरितुङ्ग पै अब मीतहिं भरि अङ्क।
पावन रघुपति चरन सों अङ्कित जाको सङ्ग॥
जब जब तू यातें मिलत बहुत दिनन में आइ।
प्रीति प्रगट तो सें करत तातो भाप उठाइ॥

कुंडलिया

१३ गैल बताऊं मेघ अब जिहिं चलि पावै चैन
फिर सुनियो सन्देश मम कानन अति सुखदैन

अर्थात् मेरो स्त्री को जीतो पावेगा वह मेरे शाप के दिन गिन्ती होगी स्त्री के कोमल हृदय को विरह में आसा ही कुम्हलाने से बचाती है॥
बादल की गरजसे उच्छलींध्र अर्थात् खुमी उपजती है मानो पृथ्वी को छत्रमिलता है ऐसो गरज सुनकर राजहंसोंको मानसरोवर जाने का उत्साह होगा मार्गमें खाने के लिये कमलनाल का पाथ अर्थात् तोसा लेकर कैलास तक वे तेरे साथ आकाश में उड़ते हुए जायंगे॥
अब तू इस ऊंचे पहाड़से भेट कर और सीख मांगकर अलकापुरीको चलदे इसकी पीठपर श्रीरामचन्द्रके पुनीत चरनोंके चिन्ह हैं और यह तेरा पुराना मित्र है बरस बरसदिन पीछे जब तू इससे मिलता है यह तत्तोभाप निकालता है मानो प्रीतिकी तत्ते आंसू गिराता है (तत्ते आंसू प्रीतके और ठंडे शोकके होते हैं)॥ मेघ की और पर्वत की आपस में सहज मित्रता कवि लोग बांधा करते हैं आगे इस मेघदूत में कई जगह यह मित्रता दिखाई जायगी॥
हे मेघ अब मैं पहले तुझे अलकापुरी का मार्ग बताता हूं जिसमें चल कर तू सुख

अद्रेः शृङ्गं वहति पवनः किंस्विदित्युन्मुखीभि-

र्दृष्टोत्साहश्चकितचकितं मुग्धसिद्धाङ्गनाभिः ॥

स्थानादस्मात् सरसनिचुलादुत्पतोदङ्मुखः खं

दिङ्नागानां पथि परिहरन् स्थूलहस्तावलेपान् ॥ १४ ॥

रत्नच्छायाव्यतिकर इव प्रेक्ष्यमेतत्पुरस्ता-

द्वल्मीकाग्रात् प्रभवति धनुः खण्डमाखण्डलस्य ॥

येन श्यामं वपुरतितरां कान्तिमापत्स्यते ते

बर्हेणेव स्फुरितरुचिना गोपवेषस्य विष्णोः ॥ १५ ॥

१४ सरसनिचुलात् = आर्द्रस्थल वेतसाः यस्मिन् तस्मात् ॥
दिङ्नागानां = दिग्गजानां ॥
ऐरावतः पुण्डरीको वामनः कुमुदोऽञ्जनः ।
पुष्पदन्तः सार्व्वभौमः सुप्रतीकश्च दिग्गजाः ॥
अवलेपान् = गर्व्वान् ॥
१५ आखण्डलस्य = इन्द्रस्य ॥

कानन अति सुखदैन थकि वा मग में जब तू
चलियो धरि धरि पांव शिखर ऊंचिन पै तव तू
भूख लगे सोता मिलें उथरे अरु बिनमैल
पी तिन को पानी तुरत लीजो अपनी गैल ॥

१४ जात तोहि ऊपर निरखि कहि हैं सीस उठाइ
मुग्धा सिद्धबधू चकित आपस में बतराइ
आपस में बतराइ बड़ो अचरज को लेखो
पवन उड़ाए जात खण्ड परवत को देखो
निचुलसरस यह भूमि तजि अब उत्तर चलि भ्रात
मेटत मद दिग्गजन के नभमारग में जात ॥

१५ सोहत पूरब ओर यह रतनजाल अनुमान
निकसत बांबी तें भलो इन्द्रचाप रुचदान
इन्द्रचाप रुचदान जासु मिलि तो तन कारो
पावत है छबि अधिक लगत नैनन कों प्यारो

पावेगा फिर अपना संदेसा सुनाऊंगा उस मार्ग में जो तू थक जाय तौ पहाडोंकी शिखरपर पांव धरकर बिश्राम करता हुआ चलियो और भूख लगे तौ उथले सोतों का निर्मल जल पीलीजो ॥

१४ आकाश में तुझे जाता हुआ देखकर सिद्धों की मुग्धा स्त्री आपस में चकित सी होकर कहेंगो कि क्या यह परवत का टुकड़ा है जिसे पवन उड़ाए लिये जाता है (सिद्ध एक प्रकार के देवता हैं जो आकाश में रहते हैं) अब तू इस आले स्थान से जहां बेत उपजते हैं उत्तरको चल और दिग्गजों को जो अपने बड़े शरीरका घमंड है वह घमंड उनका तुझे देख कर मिट जायगा क्योंकि वे जानेंगे कि यह हमसे भी बड़ा आया ॥

१५ लोकप्रसिद्ध बात है कि इन्द्रधनुष सांपकी बांबी से निकलताहै ऐसाही कालिदासा भी कहते हैं और उपमा देते हैं कि काला बादल रंग बिरंगे धनुष से वह शोभा

त्वय्यायत्तं कृषिफलमिति भ्रूविकारानभिज्ञैः
प्रीतिस्निग्धैर्जनपदवधूलोचनैः पीयमानः ॥
सद्यस्सीरोत्कषणसुरभिक्षेत्रमारुह्य मालं
किञ्चित् पश्चाद्व्रज लघुगतिः किञ्चिदेवोत्तरेण ॥ १६ ॥

त्वामासारप्रशमितवनोपप्लवं साधु मूर्ध्ना
वक्ष्यत्यध्वश्रमपरिगतं सानुमानाम्रकूटः ॥
नक्षुद्रोऽपि प्रथमसुकृतापेक्षया संश्रयाय
प्राप्ते मित्रे भवति विमुखः किम्पुनर्यस्तथोच्चैः ॥ १७ ॥

छन्नोपान्तः परिणतफलद्योतिभिः काननाम्रै-
स्त्वय्यारूढे शिखरमचलः स्निग्धवेणीसवर्णे ॥
नूनं यास्यत्यमरमिथुनप्रेक्षणीयामवस्थां
मध्ये श्यामः स्तन इव भुवश्शेषविस्तारपाण्डुः ॥ १८ ॥

---

१६ त्वय्यायत्तं = त्वयि आयत्तं = ते अधीनं ।
भ्रूविकारानभिज्ञैः = भ्रुकुटिविलासानामज्ञातृभिः ॥

१७ वनोपप्लवं = दवाग्निं ॥

१८ अमरमिथुनप्रेक्षणीयां॥ खेचरदम्पतोर्दर्शनीयां ॥

मोरचन्द्रिका सङ्ग सुभग जैसे मन मोहत
गोपवेष गोविन्द बहुत स्यामल तन सोहत ॥

१६ करकै दृग ऊंचे लखें भोरे भरेपियार
ग्रामबधू तुहि जानकै खेतीफल दातार
खेतीफल दातार पहुंचियो मालभूमि वर
नए जुते जहं खेत सुगन्धित होइं अधिकतर ॥
कछु पच्छिम दिश पलटि शीघ्रगति तन में धरकै
चलियो जलधर मीत फेर उत्तर मुख करकै ॥

सोरठा

१७ अम्रकूट तनताप मेटी तैं बहुधा बरसि।
सो धरि है सिर आप तो मारग के थकित कों ॥
मीतहिं आएं द्वार बिमुख होत नहिं नीचह्न।
सुमिरि प्रथम उपकार ऊंच बिमुख कब ह्वै सके ॥

१८ रह्यो चहूंदिश छाइ पके आम बन शैल वह।
ता सिर जब तू जाइ बैठै चिक्कनचिकुर रंग ॥

पाविगा जो मोरचन्द्रिका से श्रीकृष्ण का श्याम शरीर पाता था ॥

१६ हे मेघ तुझे गांव की स्त्रियां यह जानकर कि खेती का फल तेरेही आधीन है नेह भरी आंखों से जो भौंह चलाना नहीं जान्ती हैं देखेंगी तू मालदेस को जाना जहां नए जुते खेतों से सुहावनी सुगंध निकलती होगी फिर थोड़ासा पच्छिम की ओर पलटकर तुरन्त उत्तर को चलदीजो ॥

१७ तैंने मेह बरसाकर बहुत बार अम्रकूट पर्वत की ताप मिटाई है इस लिये जब तू मारग का थका हुआ उस के पास पहुंचेगा वह तुझे अपने सिर पर रख लेगा क्यों कि जिसने कुछ उपकार पहले कर लिया हो उसे द्वार पर आए नीच भी आदर देते हैं फिर ऊंचों का तो क्या कहना है।

१८ वह पहाड़ पक्के आंबों से छाया हुआ पीला दीखता होगा उस को शिखर पर जब तू चिकनी वेनीके समान काला जाकर बैठेगा तो ऐसी शोभा होगी मानो पृथ्वीके

अध्वक्लान्तं प्रतिमुखगतं सानुमांश्चित्रकूट-
स्तुङ्गेन त्वां जलद शिरसा वक्ष्यति श्लाघमानः
आसारेण त्वमपि शमयेस्तस्य नैदाघमग्निं
सद्भावार्द्रः फलति नचिरेणोपकारो महत्सु ॥ १८ ॥

स्थित्वा तस्मिन् वनचरवधूभुक्तकुञ्जे मुहूर्त्तं
तोयोत्सर्गाद्द्रुततरगतिस्तत्परं वर्त्म तीर्णः ॥
रेवां द्रक्ष्यस्युपलविषमे विन्ध्यपादे विशीर्णां
भक्तिच्छेदैरिव विरचितां भूतिमङ्गे गजस्य ॥ २० ॥

तस्यास्तिक्तैर्वनगजमदैर्वासितं वान्तवृष्टि-
र्जम्बूकुञ्जप्रतिहतरयं तोयमादाय गच्छेः ॥
अन्तस्सारं घन तुलयितुं नानिलश्शक्ष्यति त्वां
रिक्तस्सर्वो भवति हि लघुः पूर्णता गौरवाय ॥ २१ ॥

---

१८ नैदाघम् = निदाघर्तुभवम् ॥ (निदाघः ग्रीष्मः) ॥

२० रेवा = नर्म्मदा ॥
रेवा तु नर्म्मदा सोमोद्भवा मेखलकन्यका इत्यमरः ॥
भक्तिच्छेदः = रेखारचना ॥

२१ तिक्तैः = सुगन्धिभिः ॥
वासितं = सुरभितं ॥
प्रतिहतरयं = प्रतिरुद्धो वेगोयस्य तत् ॥

तुरत लहै छवि सोइ जोग देवदम्पति लखन ।
मनहु स्यामता होइ गोरे भूमिउरोज बिच ॥

१९ थक्यो पन्थ चलि गात निकट रहे जब जाय तू
चित्रकूट विख्यात ऊंचे सिर तुहि धारि है ॥
करियो धारासार हरन तासु ग्रीषमअगिनि
सज्जन संग उपकार फलत बिलम्ब न कछु करे ॥

२० बिलसि तहां कछुवार विहरति जहं वनचर बधू
करियोधारासार फिर द्रुतगति मग लांघियो ॥
लखियो रेवा जाइ विन्ध्यशिलन पै यों बहै
मानहु दई रचाइ गजतन रजरेखा विशद ॥

चौपाई

२१ लै चलियो वा नदि के नीरा । जमुनीकुञ्जन रुकि भए धीरा ॥
बन हाथिन जिन में मद त्यागे । अधिकसुगंधित तिहिं हितलागे॥
अन्तर जब तेरो भरि जाई । पवनहु रोकि न तोहि सकाई ॥
रीते सबहि तुच्छ जग माहीं । बिन पूरनता गौरव नाहीं ॥

पयोधरमें स्यामता है इस शोभा को देवता अपनी स्त्रियों सहित देखके प्रसन्न होंगे॥

१९ चित्रकूट पर्वत भी तुझे थका देख कर अपने सिरपर उठालेगा फिर तू तुरन्त पानी बरसाकर उसकी निदाघ अग्नि को मिटाविगा क्योंकि सज्जनके साथ जो भलाई की जाय उसका फल तुरन्त मिलता है (निदाघ=जेठ असाढ़ की धूप) ॥

२० जिसकी कुंजों में बनवासी लोगों की स्त्रियां बिहार करती हैं उस पहाड़ में थोड़ी देर ठैर कर और जल बरसने से शीघ्रगति होकर तू मार्ग उलांघियो आगे तुझे रेवा (नर्मदा) नदी मिलेगी जो बिन्ध्याचल में बहती हुई दूर से ऐसी दीखती है मानो हाथी के शरीर में स्वेत मिट्टी की लकीरों से सिंगार किया है ॥

२१ उस रेवा नदी का जल जामन के रूखों में रुक रुक कर धीरे चलता है और बनके हाथी उसमें न्हाते हैं उनके मद से सुगन्धित है उसी जलको पीकर तू आगे चलियो जल पोनेसे तू भारी होजायगा इसलिये मार्गमें तुझे पवन न रोक सकेगी ॥

नीपं दृष्ट्वा हरितकपिशं केशरैरर्द्धरूढै-
राविर्भूतप्रथममुकुलाः कन्दलीश्चानुकच्छम् ॥
दग्धारण्येष्वधिकसुरभिं गन्धमाघ्राय चोर्व्याः
सारङ्गास्ते जललवमुचः सूचयिष्यन्ति मार्गम् ॥ २२ ॥

अम्भोबिन्दुग्रहणरभसांश्चातकान् वीक्षमाणाः
श्रेणीभूताः परिगणनया निर्द्दिशन्तो बलाकाः ॥
त्वामासाद्य स्तनितसमये मानयिष्यन्ति सिद्धाः
सोत्कम्पानि प्रियसहचरीसम्भ्रमालिङ्गितानि ॥ २३ ॥

उत्पश्यामि द्रुतमपि सखे मत्प्रियार्थं यियासोः
कालक्षेपं ककुभसुरभौ पर्व्वते पर्व्वते ते ॥
शुक्लापाङ्गैः सजलनयनैः स्वागतीकृत्य केकाः
प्रत्युद्यातः कथमपि भवान् गन्तुमाशु व्यवस्येत् ॥ २४ ॥

२३ वीक्षमाणाः = कौतुकात् पश्यन्तः ॥

२४ ककुभसुरभौ = अर्जुन सुगन्धिनि ॥
केकाः = केका वाणी मयूरस्य ॥
प्रत्युद्यातः = कृतातिथ्यः ॥

२२ देखि कदम्ब सुमन मन भाए। हरित स्याम मकरन्द सुहाए ॥
कूलन माहिं निरखि कन्दलिका। नवकुसुमित बहुसुन्दर कलिका ॥
दावानल भसमित कानन में। भूमि सुगन्ध सूंघिमुद मन में ॥
मोर जलद तुहि आदर देहैं। आगे उडि उडि पन्थ दिखैहैं ॥
२३ सिद्ध निरखिहैं तो सँग आवत। चातक बारिबूंद रट लावत ॥
बगपांती एकलँग लखि लैहैं। गिनतो कर कर तियन दिखैहैं ॥
सो तिय सुनत घोर घन तेरी। कांपि चोंकि अकुलायं घनेरी ॥
अङ्ग लगाय बलम सुख पावें। बहु भांतिन तेरे गुन गावें ॥
२४ यद्यपि मम प्यारी हित लागे। तू चहे चलन मन्दगति त्यागे ॥
तदपि डरों कहुं बिलमि न जाई। ककुभसुगन्धित शैलन भाई ॥
सुनि आदरयुत बोल शिखिन के। सजल नैन कोए सित जिनके ॥
काबिधि तुरत गमन होइ तेरो। इहिं शङ्का व्याकुल मन मेरो ॥

२२ तेरे बरसने से कदम्बोंमें काले पीले रङ्गोंके फूल लगेंगे कछारोंमें कन्दली कल्याइंगी दावानल से जलेहुए बनमें सुगन्ध उठेगी इनको देख और सूंघकर मोर मगन होंगे तेरे आगे उड़ उड़ कर मार्ग दिखावेंगे (बादलकी और मोर को सहज मित्रता है)॥

२३ सिद्ध जात के देवता (जो आकाश में रहते हैं) तेरे साथ आते हुए मेह की बूंद का रस लेनेवाले पपीहों को बड़े चावसे देखेंगे और बगलों की पंक्ति को गिन गिन कर अपनी स्त्रियों को दिखावेंगे तेरी गरज से डरती चौंकती हुई उन्हीं स्त्रियों को कंठ लगाकर तेरे गुन गावेंगे ॥

२४ हे मेघ तू मेरो प्यारी के पास संदेसा पहुंचाने को यद्यपि शीघ्र जाना चाहेगा फिर भी मुझे डर है कि पहाड़ों में ककुभ (अर्जुन) की अच्छी सुगन्ध सूंघकर तू कहीं ठैर न जाय और यहभो डर है कि स्वेत और सजल कोयोंवाले मोरोंकी आदरभरी कूक सुनकर तेरा तुरन्त चलना क्योंकर होगा ॥

पाण्डुच्छायोपवनवृतयः केतकैस्सूचिभिन्नै-
र्नीडारंभे गृहबलिभुजामाकुलग्राम चैत्याः ॥
त्वय्यासन्ने फलपरिणतिश्यामजम्बूवनान्ता-
स्सम्पत्स्यन्ते कतिपयदिनस्थायिहंसा दशार्णाः ॥ २५ ॥

तेषां दिक्षु प्रथितविदिशालक्षणां राजधानीं
गत्वा सद्यः फलमतिमहत् कामुकत्वस्य लब्धा ॥
तीरोपान्तस्तनित सुभगं पास्यसि स्वादुयुक्तं
सभ्रूभङ्गं मुखमिव पयो वेत्रवत्याश्चलोर्म्मि ॥ २६ ॥

नीचैराख्यं गिरिमधिवसेस्तत्र विश्रामहेतो-
स्त्वत्सम्पर्कात् पुलकितमिव प्रौढपुष्पैः कदम्बैः ॥
यः पण्यस्त्रीरतिपरिमलोद्गारिभिर्नागराणा-
मुद्दामानि प्रथयति शिलावेश्मभिर्यौवनानि ॥ २७ ॥

२५ नीडः =पक्षिगृहं ॥
दशार्णाः =नाम देशः ॥

२६ फलमतिमहत् = "कामिनामधरास्वादः सुरतादतिरिच्यत" इति भावः ॥

२७ नीचैराख्यं गिरिम् = नीचगिरिम् ॥

२५ पहुंचि दशारन जब तू जाई। कछु दिन हंस बसें तहं भाई॥
कलित केतकी जहं मन मोहें। उपवन सीम पराडुरंग सोहें॥
नीड़ समय पंछी बहु आवें। रुख्यन माहिं कलोल मचावें॥
स्याम बरण सुन्दर दुतिमन्ता। जमुनीफल पकिभे बनअन्ता॥

२६ विदिशा नाम तहां रजधानी। देश देश विख्यात बखानी॥
ता ढिंग पहुंचि जबहि तू जैहै। रसबिलास को अतिफल पैहै॥
वेत्रवती तट गरजत धीरा। लीजो मधुर तरंगित नीरा॥
मनहुं कुटिल भ्रकुटीयुत मुखतें। अधरामृत लीनो अति सुखतें॥

सवय्या

२७ है विदिशा ढिंग नीचगिरी करियो बिसराम तहां घन जाइके॥
तोहि मिलें लखिहै पुलकात सो आछे कदम्ब के फूलन छाइके॥
वेस्यन के अंग राग की गन्धि गुफान तें व्यारि के संग उड़ाइके॥
देहै बताइ बिहार करें यहां नागर छैल नए नए आइके॥

---

२५ तेरे पहुंचने से दशारन देश में कुछ दिन हंस ठैरेंगें उस देश में केतकी वहुत होती हैं उन के फूलों से बागों की सीमा पीली दीखेंगी गांव निकट के रूखों में घोंसला बनाने के दिनों पखेरू कलोल करेंगे जामुन के पक्के फलों से बन के किनारे स्याम दिखाई देंगे॥

२६ दशारन की राजधानी विदिशा (अर्थात भेलसा) है जहां वेत्रवती नदी बहती है तू मन्द मन्द गरज कर उस तरंगित नदी का जल ऐसे लेगा मानो भौंह चढ़ाती हुई नाइका का अधरामृत नायकने लिया और यही रसबिलास का उत्तम फल है (कामिनामधरास्वदः सुरतादतिरिच्यते)॥ कवि लोग मेघ को नायक और नदी को नाइका बांधा करते हैं॥

२७ विदिशा के निकट नीचगिरी नाम पर्वत है उसपर तू विश्राम लीजो वह फूले हुए कदम्बों से ऐसा दीखेगा मानो तेरे मिलाप से पुलकित है उसकी गुफाओं से वेश्याओं के अंगराग की सुगन्धि निकलती है इस से जाना जायगा कि नगर के छैला यहां आ आकर विहार करते हैं॥

विश्रान्तस्सन् व्रज नगनदीतीरजातानि सिञ्च-
न्नुद्यानानां नवजलकणैर्यूथिकाजालकानि ॥
गण्डस्वेदापनयनरुजा क्लान्तकर्णोत्पलानां
छायादानात् क्षणपरिचितः पुष्पलावी मुखानाम् ॥ २८ ॥

वक्रः पन्था यदपि भवतः प्रस्थितस्योत्तराशां
सौधोत्सङ्गप्रणयविमुखो मास्मभूरुज्जयिन्याः ॥
विद्युद्दामस्फुरणचकितैस्तत्र पौराङ्गनानां
लोलापाङ्गैर्यदि न रमसे लोचनैर्वञ्चितोऽसि ॥ २९ ॥

वीचिक्षोभस्तनितविहगश्रेणिकाञ्चीगुणायाः
संसर्पन्त्याः स्खलितसुभगं दर्शितावर्त्तनाभेः ॥
निर्विन्ध्यायाः पथि भव रसाभ्यन्तरं सन्निपत्य
स्त्रीणामाद्यं प्रणयवचनं विभ्रमो हि प्रियेषु ॥ ३० ॥

२८ पुष्पलावी = पुष्पावचायिका ॥

२९ उज्जयिनी स्याद्विशालाऽवन्ती पुष्पकरण्डिनी ॥

३० निर्विन्ध्या = नाम नदी ॥
विभ्रमः = विलासः ॥

२८ ठैरकै नैक तहां चलियो बरसावत नीर नई बुंदियान तें
सींचत नाग नदी तट बागन छाइ चमेली रहीं कलियान तें
दै छिन छांह को दान सखा करियो पहचान तू मालिनियान तें
कान के फूल गए जिनके कुम्हलाइसे पोंछत स्वेद मुखान तें॥

२९ तो दिश उत्तर चालनहार के मारग केतोहू फेर परे किन
वा उज्जयनि की आछे अटा परसे बिन तू चलियो कितहू जिन
चंचल नैन वहां अबलान के बिज्जुछटा चकचौंधे करै छिन
जो न लख्यो उन नैनन तू हकनाहक देह धरेही फिरै गिन॥

३० रस बीच में लैचलियो निरबिन्ध को जो मग तेरो निहारती है
कटि किंकिनि मानो बिहंगम पांति तरङ्ग उठे झनकारती है
मन रञ्जन चालि अनोखी चले अरु भौंर की नाभि उघारती है
बतरान है मीतसों आदि यही तिय विभ्रम मोहनी डारती है॥

२८ वहां थोड़ी देर ठैर कर तू नग नदी तीर के बगीचोंमें चमेलियों को अपनी नई बूंदों से सींचता हुआ चलियो दुपहरी में मालिन फूल बीनती होंगी सुख का पसीना पोंछते पोंछते कानोंपर रक्खे हुए फूल के गहने उनके कुम्हला गए होंगे तेरी छाया पड़ने से सुख पाकर वे तेरा गुन मानेंगो॥

२९ तू अलकापुरी को जानेवाला है वह उत्तर दिशा में है उज्जयनि होकर जायगा तो कुछ फेर पड़ेगा परन्तु फेर पड़े तो पड़े उस नगरी को देखे बिना मत रहियो वहां स्त्रियों के नेत्र बड़े चंचल हैं तेरी बिजली से चोंधकर अधिक शोभायमान होजायंगे जो उन नेत्रों ने तुझे न देखा तो तेरा देह धरनाही अकारथ है॥

३० मार्ग में निरविन्ध्या नदी मिलेगी उसके तट पर जो हंसों की पंक्ति बैठी है सोई मानो उसकी कमर की तागड़ी है हंसों का बोलना है सोई तागड़ी के घुंघुरुओं की झनकार है उस की चाल भी अनोखी है अर्थात चक्कर खाकर चलती है और उस में भंवर पड़ता है सोई मानो तुझे ललचाने को वह अपनी नाभ दिखाती है क्योंकि स्त्री का हावभावही प्रीतम के साथ पहला वार्त्तालाप होता है॥

वेणीभूतप्रतनुसलिला तामतीतस्य सिन्धुः
पाण्डुच्छाया तटरुहतरुभ्रंशिभिः शीर्णपर्णैः ॥
सौभाग्यं ते सुभग विरहावस्थया व्यञ्जयन्ती
कार्श्यं येन त्यजति विधिना स त्वयैवोपपाद्यः ॥ ३१ ॥

प्राप्यावन्तीमुदयनकथाकोविदग्रामवृद्धां
पूर्वोद्दिष्टामनुसर पुरीं श्रीविशालां विशालाम् ॥
स्वल्पीभूते सुचरितफले स्वर्गिणां गां गतानां
शेषैः पुण्यैर्हृतमिव दिवः कान्तिमत् खण्डमेकम् ॥ ३२ ॥

३१ सिन्धुः = नाम नदी ॥
व्यञ्जयन्ती = प्रकाशयन्ती॥

३२ अवन्तीम् = उज्जयिनीम् ॥
उदयन = नाम राजा वत्सराज इति प्रसिद्धः ॥
पूर्व्वोद्दिष्टां = पूर्व्वोक्तां ॥
श्रीविशालां = सम्पत्तिमहतीम् ॥
विशालां पुरीं = उज्जयिनीम् ॥

३१ जल सूखत सिन्धु भई पतरी तनबेनीसरीको दिखावती है
तटरूखन तें झरें पात पके छवि पीरी मनो अंग लावती है
धरि सोहनो रूप बियोगिनि को वह तोमें सुहाग मनावती है
करियो घन सो बिधि वाके लिये तनछीनता जोकि मिटावती है

घनाक्षरी

३२ ख्यात है अवन्ती जहां केतेक निवास करें
पण्डित जनय्या उदयन की कथान के।
जाइके तहां प्रवेश कीजो वा विशाला बीच
देखलीजो शोभासाज सकल जिहान के।
भूमितें गए जो नर देवलोक भोगिबे कों
करि करि काज बड़े धर्म औ प्रमान के।
तेई फेरि आए संग सारभाग स्वर्ग लाए
प्रबल प्रताप मनो शेष पुन्नदान के॥

३१ आगे सिन्धु नदी मिलेगी जो तेरे लिये वियोगिनी का रूप धर रही है जेठ मास बीत चुका है इस से सूखकर पतली हो गई है मानो वियोग की बेनी बांधी है तट के रूखों से पीले पत्ते गिरते हैं उनसे रंग पीला दीखता है जैसा वियोगिनीका होता है तू उसे अपना रस (जल) दीजो जिस से उस की दुर्बलता मिट जाय॥

३२ उदयन नाम एक बड़ा प्रतापी राजा उज्जयन में हुआ है उस की बहुत सी कथा प्रसिद्ध हैं इन कथाओं के जाननेवाले पंडित अवन्तीमें बहुत बसते हैं उसी नगरी में विशाला नाम मुख्य स्थान है जहां पहुंचकर तू सब जगत की शोभा देख लेगा वह ऐसो उत्तम है मानो स्वर्ग का एक मुख्य टुकड़ा है जिसे अच्छे लोग स्वर्ग भोगकर अपने बचे हुए पुन्यों के प्रताप पृथ्वीपर ले आए हैं॥

दीर्घीकुर्वन् पटुमदकलं कूजितं सारसानां
प्रत्यूषेषु स्फुटितकमलामोदमैत्रीकषाय: ॥
यत्र स्त्रीणां हरति सुरतग्लानिमङ्गानुकूल-
श्शिप्रावात: प्रियतम इव प्रार्थनाचाटुकार: ॥ ३३ ॥

जालोद्गीर्णैरुपचितवपु: केशसंस्कारधूपै-
र्बन्धुप्रीत्या भवन शिखिभिर्दत्तनृत्योपहार: ॥
हर्म्येष्वस्या: कुसुमसुरभिष्वध्वखिन्नान्तरात्मा
त्यक्त्वा खेदं ललितवनितापादरागाङ्कितेषु ॥ ३४ ॥

३३ सिप्रा = नाम नदी ॥

३४ जालोद्गीर्णै: = गवाक्ष मार्गनिर्गतै: ॥
केशसंस्कार धूपै: = वनिता केश वासनार्थैर्गन्धद्रव्य धूपै: ॥

३३ प्रातंकाल फूले नित्त कंजन तें भेटि भेटि
रंजन हिये को होत गन्ध सरसानो है।
दीरघ करत मदमाते बोल सारस के
सुरन रसीले सुने कान सुख मानो है।
एते गुन साथ तात सिपरा नदी को वात
पीतम समान वीनती में अति स्यानो है।
सुरतग्लानि हरत सोई तहां नारिन की
गातहितकारी जात याहीतें बखानो है॥

३४ उड़त झरोखन तें केशगंध धूप वहां
होइ अंग तेरो पुष्ट मेघ वाहि पीजो तू।
देखि तोहि बार बार नाचेंगे घरेलू मोर
प्रीति सतकार मीत सोई मानलीजो तू।
सोंधे होइं फूलनतें मन्दिर अवन्तिका के
चैन थके गातन कों नेक तहां दीजो तू।
ललित तियान पांव रंजित महावर तें
अंकित अटान जाइ बिसराम कीजो तू॥

३३ वहां सिपरा नदी का पवन प्रात:काल खिले कमलों से मिलकर सुगन्धित होता है सारसों (रसिकों अथवा हंसों) की कूक बढ़ाता है स्त्रियोंके शरीर से लगकर पसीने सुखाता है ये गुन उस में ऐसे हैं जैसे चतुर नायक में होते हैं॥

३४ अवन्ती के महलों में स्त्रियां अपने केशों को अगर चन्दन इत्यादि के धुएं से सुगन्धित करती हैं वही धुआं झरोखों से उड़ता है उसे तू पीलेगा तो तेरा शरीर पुष्ट हो जायगा पालतू मोर तुझे आदर देने के लिये नाचेंगे वहां फूलों से महल महक रहे हैं चतुर स्त्रियोंके महावर लगे पैरों के चिन्ह अटों की छत पर लगे हैं उन्ही छतोंपर तू बिसराम लीजो॥

भर्त्तुः कण्ठच्छविरिति गणैस्सादरं वीक्ष्यमाणः
पुण्यं यायास्त्रिभुवनगुरोर्धाम चण्डेश्वरस्य ॥
धूतोद्यानं कुवलयरजोगन्धिभिर्गन्धवत्या-
स्तोयक्रीड़ाविरतयुवतिस्नानतिक्तै र्मरुद्भिः ॥ ३५ ॥

अप्यन्यस्मिन् जलधर महाकालमासाद्य काले
स्थातव्यं ते नयनविषयं यावदत्येति भानुः
कुर्वन् सन्ध्यावलिपटहतां शूलिनः श्लाघनीया-
मामन्द्राणां फलमविकलं लप्स्यसे गर्ज्जितानाम् ॥ ३६ ॥

३५ चण्डेश्वरः = चण्डाया ईश्वरः अर्थात् पार्व्वती पतिः ॥
गन्धवती = नाम नदी ॥

३६ महाकालं = महाकालाख्यं स्थानं ॥
आकाशे तारकं लिङ्गं पाताले हाटकेश्वरम् ।
मर्त्यलोके महाकालं दृष्ट्वा काममवाप्नुयात्

आमन्द्रं = ईषद्गम्भीरं ॥

३५ जइयो तू फेर मीत पावन पुनीत ठांव
चंडेश्वर धाम तीनलोकअधिकारी के ।
नाथ के गरे की छवि देखि अङ्ग तेरे माहिं
आदर सों लेंगे तोहि गण त्रिपुरारि के ।
करें जलकेलि नारि नागरि नवेली तहां
गन्धित हैं नीर गन्धवती सिन्धु प्यारी के ।
नीरन तें मोद औ कमोदन तें लै पराग
पवन झकोरे नित्त रूख बागवारी के ॥

३६ सांझ के बिना जो कहूं पहुंचे तू और काल
महाकालजू के पुन्यआश्रम में जाइके ।
ठैर तहां लीजो ईठ भानु रहै जोलों दीठ
दिवस उजारो रहै छिति छहराइके ।
सन्ध्यावलि पूजन जब होइ शूलधारी की
दुन्दुभि की ठौर दीजो गरज सुनाइके ।
मन्द मन्द घोरन को पावैगो फल अखण्ड
ऐसे वरदाई देव देव कों रिझाइके ॥

---

३५ फिर उसी नगरी में तू महादेवजीके पवित्र धाम चण्डेश्वर जाना वहां तेरे नीलेवर्ण को अपने स्वामी के गले को अनुहार देखकर शिवजी के गण तुझे आदर देंगे उसी धाम में गन्धवती नदी वहती है जिसमें कस्तूरी इत्यादि का उवटन लगाकर नगर की स्त्रियां न्हाती हैं इस से उसका जल सुगन्धित है उसी जलकी सुगन्ध और नदी के कमलों का पराग लिये हुए पवन बगीचों के वृक्षों को झकोरती रहती है ॥

३६ जो तू सन्ध्याकाल से पहले अथवा पीछे महाकाल के मन्दिर पै पहुंचे तो सन्ध्या की आरती के समय तक वहीं ठैरियो जब आरती होनेलगै तू मन्दा मन्दा गरजियो तेरी गरज को दुन्दुभी का शब्द जानकर शिवजी प्रसन्न होंगे ॥

पादन्यासक्कणितरसनास्तत्र लीलावधूतैः
रत्नच्छायाखचितवलिभिश्चामरैः क्लान्तहस्ताः ॥
वेश्यास्त्वत्तो नखपदसुखान् प्राप्य वर्षा ग्रविन्दू-
नामोच्यन्ति त्वयि मधुकरश्रेणिदीर्घान् कटाक्षान् ॥ ३७ ॥

पश्चादुच्चैर्भुजतरुवनं मण्डलेनाभिलीन-
स्सान्ध्यं तेजः प्रतिनवजवापुष्परक्तं दधानः ॥
नृत्यारम्भे हर पशुपतेरार्द्रनागाजिनेच्छां
शान्तोद्वेगस्तिमितनयनं दृष्टभक्तिर्भवान्या ॥ ३८ ॥

३७ आमोच्यन्ति इत्यादि = आसन्नाणां गर्ज्जितानामिदं फलम् ॥

३८ नागाजिनेच्छां हर = गजचर्म धारणेच्छां निवर्तय त्वमेव तत्स्थाने भवेति भावः ॥
स्तिमितं = निश्चलं ॥

३७ नाचति नवेली तहां वेश्या अलवेली बाल
किंकिनी बजति पग धरत सुहावनी ।
रत्नजड़ी डांड़िन के ढोरति हैं ठाढ़ी चौंर
थकित भुजान करें लीला ललचावनी ।
जाइ नखरेखन में उनके परेंगी जब
नई बूंदतेरी मेघ सुखसरसावनी ।
बड़े से कटाच्छ तोपै भ्रमरावली समान
डारेंगी सनेहभरे वेई मनभावनी ॥

३८ बांधि फेरि मण्डल जब लेगो तू छाइ मीत
लांबीसी भुजान रूप ऊंचे रूखवारो बन ।
फूल है जवा को नयो ता समान लालरंग
तेज सांझकाल हू को धारिलेगो कारेतन ।
नृत्यसमै ओढ्यो चहैं आली गजचर्म नाथ
देखि तोहि भूलिजाइं ताको खरो प्यारोपन ।
ग्लानि के मिटेते स्वस्थचित्त ह्वै भवानी तोहि
प्यार सों लखैंगी आज हरष्यो हमारो मन ॥

---

३७ उस मन्दिरमें वेश्या नाचती होंगी उनके नखच्छदों में तेरी बूंद पड़ने से सुख होगा इसलिये तुझे वे बड़े प्यार से कटाच्छ करके देखेंगी उनके कटाचऐसे हैं जैसे भौंरों के पास की पंक्ति (अर्थात् काली और बिषभरी)॥

३८ जब तू ऊंचे ऊंचे रूखोंवाले बन पर छा जायगा और सन्ध्या की अरुणता का प्रतिबिम्ब तेरे काले शरीर में झलकेगा तो तू ऐसा दिखाईदेगा मानों लोहू टपकता हुआ हाथी का चमड़ा है तांडव नृत्य के समय शिवजी की इच्छा हाथी का खाला चाम ओढ़ने की होती है तुझे देखकर वह इच्छा पूरी होजायगी और पार्वतीजी को जो ग्लानि लोहू टपकता गजचर्म देखने से होती है वह न होगी इसलिये वे तुझे प्यार की दृष्टि से देखेंगी ॥

गच्छन्तीनां रमणवसतिं योषितां तत्र रात्रौ
रुद्धालोके नरपतिपथे सूचिभेद्यैस्तमोभिः ॥
सौदामिन्या कनकनिकषच्छायया दर्शयोर्व्वीं
तोयोत्सर्गस्तनितमुखरो मा च भूर्विक्लवास्ताः ॥ ३९ ॥

तां कस्याञ्चिद्भवनवडभौ सुप्तपारावतायां
नीत्वा रात्रिं चिरविलसनात् खिन्नविद्युत्कलत्रः ॥
दृष्टे सूर्य्ये पुनरपि भवान् वाहयेदध्वशेषं
मन्दायन्ते न खलु सुहृदामभ्युपेतार्थ कृत्याः ॥ ४० ॥

३९ विद्युच्छायया मार्गं दर्शय किन्तु तोयोत्सर्गस्तनिताभ्यां
वृष्टिगर्ज्जिताभ्यां शब्दायमानो माऽभूः ॥

४० भवनवडभिः = गृहाच्छादनोपरिभागः ॥
पारावतः = कपोतः ॥

सवय्या

३९ मीत के मन्दिर जाति चलीं
मिलिहैं तहां केतिक राति में नारी।
मारग सूझ जिन्हे न परै जब
सूचिकाभेदि झुकै अंधियारी।
कंचनरेख कसौटीसी दामिनि
तू चमकाइ दिखाइ अगारी।
कीजियो ना कहुं मेह की घोर
मरैं अबला अकुलाइ बिचारी॥

४० थकि जाइगी दामिनि तेरी तिया
बहुबेर लौं हासविलास करै।
टिक रात में लीजियो काहू अटा
जहां सोवत होइं परेवा परै।
दिन ऊगत फेर उतै चलियो
जित में चलिबे कौं रहे डगरै।
सहतात कहां नर वे जग में
जिन मीत के कारज सीस धरै॥

३९ अवन्ती में तुझे बहुत सी अभिसारिका नाइका रात में अपने अपने प्रीतमों के पास जाती हुई मिलेंगी तेरे पहुंचने से अंधेरी ऐसी गाढ़ी झुकेगी मानो सुई से छिद जाइगी जब उस अंधेरी में उनको मार्ग न सूझे तो तू बिजली ऐसो चमका दीजो जैसे काली कसौटी पै सोने की लकीर होती है परन्तु मेह की घोर मत कीजो नहीं तो वे घबड़ा जाइंगी॥

४० चमकते चमकते तेरी प्यारी बिजली थक जाइगी इसलिये किसी एकान्त महल पर जहां खटका इतना भी न हो कि सोते हुए कपोत जाग पड़ें तू रात में विसराम करलीजो फिर प्रातःकाल अलका का मार्ग लीजो क्योंकि जिसने मित्र का कारज अपने सिर लिया उसे उस कारज के होने तक सस्ताना नहीं मिलता॥

तस्मिन् काले नयनसलिलं योषितां खण्डितानां
शान्तिं नेयं प्रणयिभिरतो वर्त्म भानोस्त्यजाशु ॥
प्रालेयास्रं कमलवदनात् सोऽपि हर्तुं नलिन्याः
प्रत्यावृत्तस्त्वयि कररुधि स्यादनल्पाभ्यसूयः ॥ ४१ ॥

गम्भीरायाः पयसि सरितश्चेतसीव प्रसन्ने
छायात्मापि प्रकृतिसुभगो लप्स्यते ते प्रवेशम् ॥
तस्मादस्याः कुमुदविशदान्यर्हसि त्वं न धैर्य्या-
न्मोघीकर्त्तुं चटुलसफरोद्वर्त्तनप्रेक्षितानि ॥ ४२ ॥

४१ प्रत्यावृत्तः = प्रत्यागतः ॥

४२ गम्भीरा = नाम नदी ॥

मोघी = विफली ।

सफरः = मीनः ॥

उद्वर्तनं = उल्लुण्ठनं ॥

४१ भोर भएं बनिता खण्डितान के
मीत मिलें अंसवा पुछजात हैं ।
छोड़ियो यातें तुरन्तहि सो मग
जा मग आवत भानु प्रभात हैं ।
चाहत वेहू मिटावन कों
नलिनी मुख ओस के आंसू दिखात हैं ।
रोकियो ना उनकी किरनें
अनखाइ बड़े अनखान की बात हैं ॥

४२ अति उज्जल नीर गंभीरा नदी
निरदोष हिये के समान धरै ।
मनभावन तो प्रतिबिम्ब सुहावन
ता जल जाइ परैही परै ।
फिर का बिधि होइगो जोग जु तू
निठुराई सखा इतनी पकरै ।
सफरी गति चंचल स्वच्छ सरोरुह
वाको चितौनि निरास करै ॥

---

४१ प्रात का समय ऐसा होता है कि उस में खंडिता नायकाओं का क्लेश उन के प्रीतम आकर मिटाते हैं और सूरज देवता भी अपनी प्यारी कमलिनी के मुख से ओस के आंसू पोंछने आते हैं इसलिये तू उस समय सूरज का मार्ग न रोकियो जो रोकेगा तो सूरज तुझपै कोप करेंगे और खंडिता नायका भी क्लेश में रहेंगी ॥

४२ गंभीरा नदी का जल ऐसा उज्जल है मानो स्त्री का निर्दोष हृदय और उस में सफरी मछलियों की झपट हैं सोई मानो कमल समान स्वच्छ नेत्रों के कटाक्ष हैं उस जलरूपी हृदय में जब तू प्रतिबिम्ब रूप से प्रवेश करलेगा फिर क्योंकर ऐसा कठोर हो सकेगा कि उन कटाक्षों को देखा अनदेखा करके चलाजाय ॥

तस्याः किञ्चित् करधृतमिव प्राप्तवानीरशाखं
हृत्वा नीलं सलिलवसनं मुक्तरोधोनितम्बम् ॥
प्रस्थानं ते कथमपि सखे लम्बमानस्य भावि
ज्ञातास्वादो विवृतजघनां को विहातुं समर्थः ॥ ४३ ॥

त्वन्निस्यन्दोच्छ्वसितवसुधागन्धसम्पर्कपुण्यः
स्रोतोरन्ध्रध्वनितसुभगं दन्तिभिः पीयमानः ॥
नीचैर्व्वास्यत्युपजिगमिषोर्देवपूर्व्वं गिरिं ते
शीतो वायुः परिणमयिता काननोदुम्बराणाम् ॥ ४४ ॥

तत्र स्कन्दं नियतवसतिं पुष्पमेघीकृतात्मा
पुष्पासारैस्स्नपयतु भवान् व्योमगङ्गाजलार्द्रैः ॥

---

४३ वानीरं = वेतसं ॥

विवृतजघनाम् = प्रकटी कृतं जघनं यया ताम् ॥

४४ देवपूर्व्वं गिरिम् = देवगिरिम् ॥

काननोदुम्बराणां परिणमयिता = वनजन्तुफलानां परिपाकयिता ॥

४५ स्कन्दः = पार्व्वती नन्दनस्स्कन्दः सेनानीरग्निभूर्गुहः ।

कार्त्तिकेयो महासेनः शरजन्मा षडाननः ॥

दोहा

४३ तट सों उठि वाको सलिल लग्यो डार वानीर ।
कर पकरत सरक्यो मनो कटितें नीलो चीर ॥
लिये ताहि कैसे बने प्यारे तेरो गौन ।
नगन जघन के तजन कों रसिया समरथ कौन ॥

४४ तो बरसत छितिगन्ध मिलि होइ पवन रमनीय ।
बनगूलर पकवनप्रबल श्रवनसुभग गजग्रीय ॥
शीतल मन्द सुगन्ध बहि करिहै पग पग सेव ।
मारग में जब तू चले पहुंचन कों गिरिदेव ॥

सवय्या

४५ नित्त निवास कुमार करें वहां
तू उनकों अन्हवाइयो जाइके ।
पुष्पमई बदरा बनिके
नभगंग मिले फुलवा बरसाइके ।

---

४३ नदी को कवि ने प्रवतस्यत् पतिका नायका बनाया है उसका नीला जल है सोई नील वस्त्र है तरङ्ग से उठकर जो जल वेत की डाल में लगा है मानो चलते समय नायक ने उसकी निशानी लेजाने के लिये वस्त्र पकड़ा है सो तटरूपी कटि से सरक गया ऐसो नायका को छोड़कर हे मेघ तू क्योंकर आगे जा सकेगा ॥

४४ तेरे बरसने से पृथ्वी की सुगन्ध पवन को सुगन्धित करेगो वही पवन रूखों में मीठी ध्वनिसे बहेगी बन गूलरों को पकावेगी हाथियों को प्यारी लगेगी देवगिरि पर्वत तक मार्ग में तेरी सेवा में रहेगी ॥

४५ कहते हैं कि जब तारकासुरको इन्द्र न जीत सका तो देवताओं ने शिवजी से सहायता मांगी शिवजी ने देवसेना की रक्षा के निमित्त अपना तेज अग्नि को दिया परन्तु अग्नि से सहा न गया उसने गंगाजी में डाला गंगाजी का वही षण्मुख पुत्र हुआ फिर सरकड़े के बन में कृत्तिकाओं ने पाला इससे नाम उसका शरवनभव और कार्त्तिकेय हुआ अग्नि से जन्मा इसलिये पावकी कहलाया कुमार स्वामी और स्कन्द भी उसी

रक्षाहेतोर्नवशशिभृता वासवीनां चमूना-
मत्यादित्यं हुतवहमुखे सम्भृतं तद्धि तेजः ॥ ४५ ॥

ज्योतिर्लेखावलयि गलितं यस्य वर्हं भवानी
पुत्रप्रेम्णा कुवलयदलप्रापि कर्णे करोति ॥
धौतापाङ्गं हरशशिरुचा पावकेस्तं मयूरं
पश्चादद्रिग्रहणगुरुभिर्गर्ज्जितैर्नर्त्तयेथाः ॥ ४६ ॥

आराध्यैनं शरवनभवं देवमुल्लङ्घिताध्वा
सिद्धद्वन्द्वैर्ज्जलकणभयाद्वीणिभिर्द्दत्तमार्गः ॥

४६ ज्योतिर्लेखावलयि = तारापंक्ति मंडलं यस्मिनस्ति तत् ॥
कुवलयदलं = कमलदलं ।

जन्म दियो हर पावक में
जिनकों सुरराजचमू हित लाइके।
मन्द करें रवि को परतापहु
आपने मात पिता गुन पाइके॥

४६ जा उनके बरही की पखा
गिरि तारेजडीसी कहूं परती है।
गौरि उठाइके पूत सनेह सों
कानन कञ्ज सौ ले धरती है।
जासु कोएन की उज्जलता
शिव के शशिसों समता करती है।
ताहि नचाइयो घोर बड़ी करि
मांहि गुफान के जो भरती है॥

४७ चलियो घन पूजिके वा सुरकों
शर को बन जासुको जन्ममही है।
डर बूंदन के मग तेरी तजें
जिन दम्पति सिद्दन वीन गही है।

बालक के नाश हुए वाहन उस का मोर है जब कुमार बड़ा हुआ तारकासुर को मार उसने सदां सदां के लिये देवगिरि पर्वत पर बास लिया शिव पार्वती उस के मा बाप कहलाते हैं हे मेघ देवगिरि पर्वत पै पहुंचकर तू कुमार स्वामी को आकाश गंगा के जलमें भीगे हुए फूलों की वरषा करके स्नान कराइयो॥

४६ स्वामि कार्त्तिक का वाहन होने के कारन मोर पर पार्वती जी बहुत प्यार करती हैं उसकी गिरो हुई पंखको जिसमें चन्दोए तारेसे जड़े हैं उठाकर अपने कान पर कमल की ठौर रखलेती हैं और जिसके कोयों की उज्जलता शिवजी के मस्तकवाले चन्द्रमा की चांदनीसे होड करते हैं उसी मोरको तू बड़ी घोर करके देवगिरि पै नचाइयो॥

४७ स्कन्दजी को जिनको जन्मभूमि सरकड़े का बन है तू पूजकर आगे चलियो उन्हें वीना

...यिष्यन्
...य कीर्त्तिम् ॥ ४७ ॥

...चौरे
...त् प्रवाहम् ॥
...दृष्टी-
...दनीलम् ॥ ४८ ॥

...विभ्रमाणां
...सारप्रभाणाम् ॥
कुन्दक्षेपानुगमधुकर श्रीजुषामात्मबिम्बं
पात्रीकुर्व्वन् दशपुरवधूनेत्रकौतूहलानाम् ॥ ४९ ॥

---

४७ सुरभितनयालम्भजां = गोहननाज्जातां ॥
रन्तिदेवः = नामराजा ॥

४८ शार्ङ्गिणः = विष्णोः ॥
सिन्धुः = नदी ॥

४९ दशपुरं = रन्तिदेवस्य नगरम् ॥

व्यालम्बेथास्सुरभितनयालम्भजां मानयिष्यन्
स्रोतोमूर्त्त्या भुवि परिणतां रन्तिदेवस्य कीर्त्तिम् ॥ ४७ ।

त्वय्यादातुं जलमवनते शार्ङ्गिणो वर्णचौरे
तस्याः सिन्धोः पृथुमपि तनुं दूरभावात् प्रवाहम् ॥
प्रेक्षिष्यन्ते गगनगतयो नूनमावर्ज्य दृष्टी-
रेकं मुक्तागुणमिव भुवः स्थूलमध्येन्द्रनीलम् ॥ ४८ ॥

तामुत्तीर्य्य व्रज परिचितभ्रूलताविभ्रमाणां
पक्ष्मोत्क्षेपादुपरिविलसत्कृष्णसारप्रभाणाम् ॥
कुन्दक्षेपानुगमधुकर श्रीजुषामात्मविम्बं
पात्रीकुर्व्वन् दशपुरवधूनेत्रकौतूहलानाम् ॥ ४९ ॥

४७ सुरभितनयालम्भजां = गोहननाज्जातां ॥
रन्तिदेवः = नामराजा ॥

४८ शार्ङ्गिणः = विष्णोः ॥
सिन्धुः = नदी ॥

४९ दशपुरं = रन्तिदेवस्य नगरम् ॥